कांग्रेस पार्टी के सिद्धांत एवं विचारधारा का अध्ययन

डॉ. मानवेन्द्र सिंह परिहार
सहायक आचार्य
चौधरी बेचेलाल महाविद्यालय,
रसूलपुर, धौरहरा, लखीमपुर–खीरी

संविधान में सूत्रीकृत उद्देश्यों–''पूर्ण स्वराज की प्राप्ति तथा एक ''समाजवादी समाज की स्थापना करना''– का प्रतिबिम्ब थी। अपने निर्माण के प्रारम्भिक वर्षों में पार्टी में अधिकृत तौर पर मार्क्सवादी वैज्ञानिक समाजवाद की स्वीकृति घोषित किया। पार्टी के नेताओं का विचार था कि यह सिद्धांत गैरसमझौतावादी उग्र राष्ट्रवाद का एक मजबूत हथियार तथा देश में समतावादी समाज की स्थापना अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन बनेगा। लेकिन यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण अमिश्रित नहीं था । एक भारी विसंगति खड़ी हो गयी थी। एक तरफ तो नेताओं की ''सैद्धांतिक परम्परागत निष्ठा थी तथा मताग्रही दृष्टिकोण'' था तो दूसरी तरफ एक समझौते तक पहुँचने का प्रयास था। समझौते की प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप सभी वामपंथी गुटों तथा पार्टियों को एकजुट करने का प्रयास किया गया। लेकिन इस प्रयास से राष्ट्रवाद के साथ दृढ़ता से संबद्ध और भीतर की ओर दृष्टि रखने वाले समाजवाद तथा बाहर से लाए हुए अंतर्राष्ट्रीयतावाद में आस्था की बात करने तथा अपनी प्रेरणा व निर्देशन के लिए बाहर की ओर कॉमिन्टर्न (अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी सभा) की ओर देखने वाले समाजवाद के बीच विभाजन तथा पहचान की रेखा धुंधली हो गयी।''[i]

इसलिए मार्क्सवाद की व्याख्या को लेकर उन लोगों के बीच जो ''मार्क्सवाद लेनिनवाद की नामोपाधि से कम किसी बात से संतुष्ट नहीं थे'' तथा जो मार्क्सवादी व्याख्या के प्रति बहुत दृढ़ नहीं थे तथा इसे केवल कार्यवाही के लिए उपयोगी दिग्दर्शक अथवा ठीक–ठीक यों कहें कि सामाजिक विश्लेषण के एक उपयोगी तरीके, बाकी कुछ नहीं'' के तौर पर स्वीकार करते थे, के बीच टकराव पैदा हुआ।

पार्टी की इस सैद्धान्तिक अस्पष्टता और अनेकार्थता के चलते ही 1936 में कॉम्युनिस्ट समर्थक तत्वों के प्रभाव में कांग्रेस पार्टी ने जो मेरठ थीसिस स्वीकार की थी इसके अंतर्गत कांग्रेस पार्टी को केवल मार्क्सवादी पार्टी कहा गया न कि मार्क्सवादी–लेनिनवादी पार्टी। यह उन लोगों के बीच हुए समझौते का परिणाम मालूम होता है। जिनमें एक ओर तो मार्क्सवाद के प्रति 'अनिश्चयी' तथा संदेहग्रस्त थे तथा दूसरे वे थे जो मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धान्तों के प्रति पूर्ण आस्था और प्रतिबद्धता की घोषणा करना चाहते थे। मेरठ थीसिस में इस बात पर जोर दिया गया था कि 'पार्टी का अपना कार्यक्रम मार्क्सवादी होगा अन्यथा पार्टी अपने निर्धारित कार्य तथा नेतृत्व में विफल हो जाएगी। केवल मार्क्सवाद ही साम्राज्यवाद विरोधी लक्ष्य तक पहुंचा सकता है। इसलिए पार्टी सदस्यों को अनिवार्य रूप से क्रांति के तरीके, वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त और व्यवहार राज्य की प्रकृति तथा समाजवादी समाज तक पहुंचने की प्रक्रिया को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।''

इस प्रकार कांग्रेस पार्टी का सिद्धान्त अधिकारिक तौर पर मार्क्सवादी समाजवाद का था किन्तु जैसा बाद की घटनाओं से स्पष्ट है कि विविध प्रकार के मार्क्सवादियों तथा गैर मार्क्सवादियों के बीच मतभेद बने रहे। कांग्रेस पार्टी में अच्युत पटवर्धन तथा राममनोहर लोहिया जैसे कुछ नेता मार्क्सवाद को पूरी तरह त्यागने तथा गांधीवादी सत्याग्रह तथा सविनय अवज्ञा के तरीकों को स्वीकार करने के पक्ष में थे।[ii]

सिद्धान्तों में एकरूपता तथा दृढ़ता के अभाव के बावजूद पार्टी में कुछ विषयों पर व्यापक एकता तथा सहमति कायम रही। यह आम सहमति पार्टी के नीतिगत वक्तव्यों, कार्यक्रमों, पार्टी के नियमों तथा पहले सम्मेलन एवं बाद के वर्षों में स्वीकृत प्रस्तावों एवं कांग्रेस पार्टी नेताओं के तमाम सार्वजनिक वक्तव्यों, व्याख्यानों, तथा लेखों में परिलक्षित होती है। स्वतंत्रता संघर्ष के विश्लेषण, कांग्रेस के उद्देश्यों तथा उन्हें प्राप्त करने के तरीकों पर उल्लेखनीय सहमति रही।

कांग्रेस पार्टी का स्वतन्त्रता संघर्ष संबंधी विश्लेषण इस केन्द्रीय विश्वास पर आधारित था कि ब्रिटिश जब तक बाध्य नहीं हो जाएगें वे किसी तरह की स्वतंत्रता नहीं देंगे। यह विश्वास पूंजीवाद तथा साम्राज्यवाद की इस व्याख्या पर आधारित था कि सत्तरूढ़ पूंजीवादी तथा साम्राज्यवादी वर्ग स्वेच्छा से अपनी सत्ता में बंटवारा नहीं कर सकता क्योंकि यह पूंजीवाद पर ही टिका होता है और जो दूसरी ओर अपने अस्तित्व के लिए उपनिवेशों के लगातार शोषण पर निर्भर करता है। भारतीय परिस्थितियों में इस व्याख्या को लागू किए जाने के कारण उन्होंने ब्रिटिश शासन द्वारा लाए गए संवैधानिक सुधारों में भागीदारी तथा उसके साथ सहयोग का विरोध किया। क्योंकि कांग्रेस पार्टी के अनुसार ये सब असल में उनके शासन तथा शोषण को और स्थिर करने की युक्तियाँ थीं। यह भी माना गया कि भारतीय पूंजीपतियों, रजवाडों, तथा जमीदारों पर विश्वास नहीं किया जा सकता था तथा ब्रिटिश सरकार के साथ उनका सहयोग स्वाभाविक था क्योंकि ऐसा करना उनके वर्ग हित में था।

इस विचारधारा के अनुसार ऐसे लोग 'जो अनम्य रूप से साम्राज्यवाद विरोधी थे तथा जिन पर पूर्ण स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए निर्भर किया जा सकता था वे केवल निम्न मध्यवर्ग मजदूर तथा किसान ही थे। क्योंकि वे ब्रिटिश शासन तथा भारतीय उच्च वर्गों दोनो के शोषण के शिकार थे।' इसलिए अब पार्टी के सामने मुख्य कार्य था इन वर्गों को संगठित करना और अंतिम मुकाबले की तैयारी करना।[iii]

कांग्रेस का रूपान्तरण दो प्रकार से किया जाना था कांग्रेस के भीतर कार्य करके और कांग्रेस के बाहर साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों को संगठित करके। कांग्रेस के भीतर सोशलिस्टों को कांग्रेस संविधान के लोकतांत्रीकरण पर ध्यान केन्द्रित करना था क्योंकि उसका वर्तमान संरचना ही उसके अप्रगतिशील चरित्र के लिए बहुत कुछ जिम्मेदार था। इसलिए वे ''प्राथमिक सदस्यों तथा समितियों पर अधिक ध्यान देने तथा कांग्रेस सदस्यता व संगठन की सीमा की ओर अधिक विस्तृत करने तथा उसे सक्रिय और जीवंत बनाने के प्रयास में थे। सोशलिस्ट इस मत के भी थे कि कांग्रेस से आग्रह किया जाए कि वह किसानों, युवकों तथा श्रमिक संगठनों के निर्माण में सहायता करे क्योंकि जनसंघर्ष, शोषण व दमन के विरूद्ध दिन प्रतिदिन के संघर्ष से ही ''विकसित होगा।''[iv] लेकिन कांग्रेस का चरित्र बदलने तथा स्वतंत्रता के संघर्ष की इस रणनीति को कार्यान्वित करते हुए सोशलिस्ट इस बारे में बहुत सतर्क थे कि कांग्रेस के मंच पर केवल साम्राज्यवाद विरोधी विषयों को ही उठाया जाए। मेरठ थीसिस में चेतावनी दी गई कि ष्इस संबन्ध में हमें कांग्रेस के समक्ष पूर्ण समाजवादी कार्यक्रम रखने की भूल नहीं करनी चाहिए। इस उद्देश्य के लिए एक ऐसा साम्राज्यवाद

विरोधी कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए जो मजदूरों तथा निम्न मध्यवर्ग की आवश्यकताओं के अनुकूल हो। ''चूँकि पार्टी का लक्ष्य कांग्रेस के साम्राज्यवाद विरोधी तत्वों को समाजवाद के प्रभाव में लाना था, इसलिए इसके लिए।

''जितना संभव हो उतनी कुशलता बरतना'' आवश्यक था। पार्टी के लोगों को सचेत किया गया था कि उन्हें ''किसी भी दशा में असहिष्णुता या अधैर्यवश इन तत्वों को विमुख नहीं होने देना चाहिए।'' कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम–जिसके साथ वे सहमत नहीं थे– में सोशलिस्टों को किसी प्रकार का हस्ताक्षेप अथवा अवरोधन नहीं करना था। बल्कि उसकी ष्वैज्ञानिक तरीके से आलोचना तथा उसकी कमजोरियों को अनावृत किया जाना था।'' पार्टी के लोगों को हिदायत थी कि वे कांग्रेस की समितियों तथा पदों पर 'अधिकार' करने की उत्सुकता न प्रदर्शित करें तथा इस उद्देश्य के लिए राजनीतिक दृष्टि से अवांछित समूहों से कोई गठजोड़ भी स्थापित न करें।[v]

कांग्रेस के बाहर, पार्टी को ''किसानों मजदूरों तथा जनता के अन्य शोषित वर्गों के स्वतंत्र संगठन खड़े करना था। साथ–साथ सोशलिस्टों को ''देश के युवकों को भी संगठित करने का भी प्रयास करना था जिससे कि निम्न मध्य वर्ग के सर्वाधिक सक्रिय तत्वों को गतिशील किया जा सके। इन ''पृथक संगठनों'' को ''साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे'' में लगाना था। इस लिए स्वतंत्ररूप से काम करते हुए और अपने निजी कार्यक्रम चलाते हुए इन संगठनों को ''संयुक्त कार्यवाई'' के लिए कांग्रेस कमेटियों के साथ पंक्तिबद्ध होना था। यह अनुमान लगाया गया था कि इससे बाद में वे ''सामूहिक प्रतिनिधित्व'' के माध्यम से कांग्रेस में प्रवेश कर सकेंगे जिससे ''कांग्रेस का पूरा ढ़ाचा तथा नेतृत्व'' बदल जाएगा।'[vi] अंतः यह स्वीकार किया गया कि ''समाजवादी शक्तियां जिन पर 'साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के सचेत नेतृत्व' का दायित्व आ पड़ा है ''दुर्भाग्यवश विभाजित'' हैं और यदि समाजवादी विभाजित स्वर में बोलते हैं तो इससे घोर संभ्रत्र की स्थिति पैदा होगी जिससे ''राष्ट्रीय आन्दोलन की गति मंद पड़ जायेगी।'' इसलिए न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर उनके बीच एक समझौता आवश्यक है। जिससे कि सभी समाजवादियों की संगठित एकता तथा एक ''संयुक्त पार्टी''[vii] की अन्ततः उपलब्धि हो सके।

कांग्रेस पार्टी के नेता आम तौर से इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, वर्ग संघर्ष श्रममजीवी सर्वहारा वर्ग की तानाशाही कायम करने वाली क्रांति और अंततः वर्गविहीन समाज के स्तर तक ले जाने के विचार को स्वीकार करते थे। सैद्धान्तिक रूप से ही सही, उनका इस उक्ति में भी विश्वास था कि ''परिणाम से साधनों का औचित्य सिद्ध होता है।'' अपनी पुस्तक, वाइ सोशलिज्म? जो उस समय कांग्रेस पार्टी के सिद्धान्तों की सबसे अधिक प्रमाणिक व्याख्या मानी जाती थी, में जयप्रकाश नारायण ने ''समाजवाद की आधारशिला'' की यह कहते हुए व्याख्या की थी कि, ''समाजवादी विचारों में एकता निरंतर बढ़ती जा रही है और यह कहना पहले से कहीं अधिक संभव है कि समाजवाद का केवल एक प्रकार का और एक ही सिद्धान्त है और वह है, मार्क्सवाद।[viii] अधिकांश कांग्रेस पार्टी नेता सोवियत संघ की तरह की हिंसक जनक्रांति में भी विश्वास रखते थे। उन्होंने गाँधी का अहिंसक सविनय अवज्ञा आंदोलन को मात्र एक सुविधाजनक नीति के तौर पर स्वीकार किया था न कि सिद्धांत के रूप में। फिर भी वे वैयक्तिक हिंसा के आतंकवादी तरीके के पक्ष में नहीं थे। बहुत से सोशलिस्टों ने गाँधी के उपदेशों को प्रतिगामी बताते हुए उनकी कटु आलोचना की और उनकी तुलना उन लोगों से की जो समाज में यथास्थिति कायम रखने के लिए समाजवादी परिवर्तनों की राह में रोड़े अटकाना चाहते थे। कांग्रेस पार्टी के नेताओं ने गाँधी का चित्रण एक बीते युग के चिन्तक तथा स्वप्नदर्शी के रूप में किया था जिनके उपदेशों व कार्यों की समाजवाद के साथ कोई प्रासंगिकता नहीं थी।''[ix]

राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के कारण कांग्रेस पार्टी के कुछ नेता विशेषकर जे.पी., लोहिया, पटवर्धन तथा नरेन्द्र देव लगातार गाँधी के सम्पर्क में रहे तथा उनके विचारों से प्रभावित हुए। गाँधी यद्यपि पारम्परिक अर्थों में समाजवादी नहीं थे, लेकिन उन्हें भी धीरे–धीरे सोशलिस्टों के दृष्टिकोण में कुछ सार्थकता दिखाई देने लगी। गाँधी तथा सोशलिस्टों के बीच वैचारिक आदान–प्रदान का विवरण जयप्रकाश नारायण के शब्दों में इस प्रकार है। वह लिखते हैं– कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन के कुछ सप्ताह बाद दिल्ली में हम लोगों की गांधी जी के साथ विस्तृत बातचीत हुई। हमारी तथा गांधी जी की कार्ययोजनाओं, गांधीवादियों तथा कांग्रेस सोशलिस्ट के बीच के आपसी रिश्तों तथा कांग्रेस के सैद्धान्तिक आधारों पर विस्तार से चर्चा हुई। तीन दिन की चर्चा के बाद गांधी जी तथा हम लोगों ने अपने को एक दूसरे के अधिक निकट पाया। गांधी जी ने भी कहा कि वह हमारे अधिक निकट आये हैं।[x]

सोशलिस्टों तथा गांधी के बीच इस तरह की आपसी सहअनुमति ने तब ठोस रूप ग्रहण किया जब मार्च 1940 में जयप्रकाश नरायण ने एक प्रस्ताव का प्रारूप कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन में पारित कराने के लिए गांधी के पास भेजा। इस प्रारूप में जयप्रकाश नरायण ने समाजवादी सिद्धान्तों के आधार पर स्वतंत्र भारत का एक चित्रण प्रस्तुत किया था। लेकिन इस प्रारूप में जयप्रकाश नरायण ने समाजवाद के अनुदार मार्क्सवादी दृष्टिकोण से हट कर तथा अनेक गांधीवादी नैतिक मूल्यों जैसे– व्यक्ति के नैतिक विकास आदि पर अधिक जोर दिया तथा विकेन्द्रीकरण की वकालत की। प्रस्तावित राज्य तथा समाज का गठन किन सिद्धान्तों पर होगा, इसकी व्याख्या करते हुए जयप्रकाश नारायण ने लिखा।[xi]

राज्य का राजनैतिक तथा आर्थिक गठन सामाजिक न्याय तथा आर्थिक स्वतंत्रता पर आधारित होगा। यद्यपि यह संगठन समाज के प्रत्येक सदस्य की राष्ट्रीय आवश्यकताओं को संतुष्ट करने का प्रयास करेगा लेकिन भौतिक संतुष्टि ही इसका एकमात्र लक्ष्य नहीं होगा। इसका लक्ष्य होगा स्वस्थ जीवन तथा प्रत्येक व्यक्ति का चारित्रिक तथा बौद्धिक विकास।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान हिंसक या अहिंसात्मक कौन सा तरीका अपनाया जाएगा, इस सवाल को टालते हुए जयप्रकाश नारायण के स्वतंत्र भारत के राज्य में सत्ता परिवर्तन के लिए शांतिपूर्ण तथा अहिंसात्मक मार्ग अपनाए जाने की आवश्यकता को स्वीकार किया। उनके प्रारूप के अनुसार स्वतंत्र भारतीय राज्य पूर्ण वैयक्तिक एवं नागरिक स्वतंत्रता की गारंटी देगा किन्तु संविधान सभा के माध्यम से भारतीय जनता द्वारा बनाये गये संविधान को हिंसा द्वारा उखाड़ फेंकने की स्वतंत्रता नहीं होगी।

गांधी ने इस प्रारूप को कांग्रेस कार्य समिति के समक्ष पढ़ा। परन्तु समिति ने इसके पूर्व पटना में निर्णय लिया था कि अधिवेशन में तात्कालिक राजनीतिक स्थिति से संबंधित केवल एक प्रस्ताव पारित किया जायेगा। इसलिए प्रारूप खुले अधिवेशन में विचारार्थ प्रस्तुत नहीं किया जा सका। लेकिन गांधी ने इस प्रारूप को पसन्द किया तथा इसे अपने पत्र हरिजन में अपनी टिप्पणी के साथ जिसमें उन्होंने अधिकांश सुझावों के साथ अपनी सहमति व्यक्त की थी– प्रकाशित किया। जयप्रकाश के इस भावी स्वतंत्र भारत के चित्रण पर दी गई अपनी टिप्पणी में गांधी ने दावा किया कि वह स्वयं समाजवादी थे। किन्तु उनका समाजवाद उनकी स्वाभाविक उपज थी। वह किसी पुस्तक से गृहीत नहीं थी। उन्होंने इस बात पर दुःख प्रकट किया कि पश्चिम के समाजवादी सिद्धान्तों को लागू करने में हिंसा की आवश्यकता पर विश्वास करते हैं। कुल मिलाकर वह इस बात से प्रसन्न थे कि जयप्रकाश नारायण ने प्रारूप में प्रस्तावित सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था कायम करने के कार्य में अहिंसात्मक मार्ग को स्वीकार किया।''[xii]

1944 में लाहौर किले में कारावास के दौरान जयप्रकाश नारायण ने समाजवाद के सैद्धान्तिक पक्षों तथा भारतीय परिस्थितियों में उन्हें लागू करने के प्रश्न पर काफी गहराई से चिन्तन किया। बहुत से सवालों जैसे कि नैतिक मूल्यों की मान्यता तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण आदि पर जयप्रकाश नारायण पहले से ही गांधी के विचारों के निकट आ चुके थे। उन्होंने स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए अपनाई गयी गांधी की तकनीक, जिसके कारण व्यापक जन–जागरण हुआ तथा जनविरोध की लहर उठ खड़ी हुई, की खूबियां भी देखीं। स्वतंत्रता का संघर्ष चलाने के एक तरीके के तौर पर शुद्ध अहिंसा को अपनाने के सवाल पर यद्यपि अभी भी उनका गांधी से मतभेद था, किन्तु वह एक बुद्धिमत्तापूर्ण नीति के तौर पर इसे स्वीकार करने के लिए तैयार थे। जयप्रकाश नारायण ने 22 अक्टूबर 1944 को अपनी जेल की डायरी में लिखा। ''मैं अहिंसा में विश्वास नहीं रखता। लेकिन मैं नहीं समझता कि निहत्थी भारतीय जनता को सविनय अवज्ञा का तरीका सिखाकर गांधी जी ने देश का कोई अपकार किया है। उसके विपरीत मैं मानता हूँ कि यह देश के प्रति उनका सबसे बड़ा योगदान है।[xiii]

विश्वयुद्ध के दौरान कांग्रेस पार्टी नेताओं की सोच इस विचार के इर्द–गिर्द घूमती रही कि कार्ल मार्क्स ने राजनैतिक व आर्थिक विचारों के विकास में यद्यपि महान योगदान किया है तथापि मार्क्सवाद को किसी धर्म–सिद्धान्त की तरह मानने का कोई औचित्य नहीं है और इसी तरह यह भी आवश्यक या वांछनीय नहीं है कि गांधीवाद को भी उसकी पूर्णता में स्वीकार किया जाए, इतना पर्याप्त है कि वे समाजवादी हैं।[xiv] जेल से रिहाई के करीब एक महीने बाद 25 मई, 1946 को देहरादून में आयोजित कांग्रेस पार्टी के ग्रीष्म शिविर का उद्घाटन करते हुए जयप्रकाश नारायण मार्क्सवाद के प्रति पार्टी की स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया।

दुनिया बहुत बदल गई है और हमारा सूत्र प्रतिपादन भी बदल रहा है। हमें अपने को संशोधनवादी कहे जाने से डरना नहीं है। लेकिन मैं जो कुछ प्रस्तावित कर रहा हूँ वह संशोधनवाद नहीं है। हम लोग मार्क्स द्वारा उपलब्ध कराए गए आधारों तथा उनके जीवन व वस्तुओं के प्रति दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं तथा जीवन की बदलती परिस्थितियों में उसे लागू करते हैं।[xv]

इस प्रकार महायुद्ध के उपरांत नेताओं की रिहाई तथा पार्टी के पुनः अविर्भाव के बाद कांग्रेस पार्टी में रूढ़िवादी मार्क्सवाद से निश्चित विचलन दिखाई देता है। नव आविर्भूत पार्टी की सर्वाधिक मुखरत्रयी जे.पी., लोहिया तथा मेहता ने मताग्रही राजनीतिक चिन्तन से दूर रहने तथा उसकी जगह भारत की वास्तविकताओं से संबद्ध नवीन ''लोकतांत्रिक समाजवाद'' की स्थापना के लिए आवश्यक पहले कदम के रूप में भारत की राजनैतिक समस्याओं का व्यावहारिक तथा अनुभवसिद्ध विश्लेषण करने का संकल्प लिया। उनका लक्ष्य अब ''लोकतांत्रिक समाजवादी समाज'' था जो वास्तव में यथार्थवाद, गांधीवाद तथा मार्क्सवाद का संश्लेषण था।

यह दृष्टिकोण नवम्बर 1946 में हुए कांग्रेस के मेरठ अधिवेशन के अवसर पर लिखे गये जयप्रकाश नारायण के लेख ष्माई पिक्चर ऑफ सोशलिज्मष् से स्पष्ट हो जाता है।[xvi] इस लेख में अपनी पार्टी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए जयप्रकाश नारायण ने निश्चय के साथ कहा कि मार्क्सवाद समाजवाद का केवल एक रूप है।[xvii] स्वयं को मार्क्सवादी बताते हुए जे.पी. का दावा था कि मार्क्सवाद सामाजिक परिवर्तन का एक विज्ञान है। जिसके तौर–तरीकों और विश्वास में मताग्रह या रूढ़िवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। सच्चे अर्थों में मार्क्सवादी होने के लिए माक्सोत्तर काल की परिस्थितियों तथा वैचारिक विकास को भी ध्यान में रखना होगा। इसके कारण यह जरूरी है कि लेनिन तथा गांधी जैसे मनीषियों द्वारा प्रस्तुत विचारों को भी ध्यान में रखें। समाजवाद के उद्देश्यों को विस्तार से प्रतिपादन करते हुए, जयप्रकाश नारायण ने जहाँ उसमें समाजवादियों के प्रशंसित प्रस्तावों

जैसे बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण आदि को शामिल किया वहीं समाजवाद की अपनी अंतिम अवधारणा में गांधी जी के बहुत से आर्थिक प्रस्तावों को भी सम्मिलित किया। उन्होंने लिखा। मेरे समाजवादी भारत का आर्थिक स्वरूप इस प्रकार होगा रू ग्राम पंचायतों द्वारा संचालित सहकारी खेतीरू नये बन्दोबस्त में सामूहिक फार्म, बड़े पैमाने के उद्योगों का स्वामित्व व प्रबन्ध राज्य के हाथ, उद्योगों का सामुदायिक स्वामित्व व प्रबंध, तथा लघु उद्योगों का गठन उत्पादकों की सहकारी समितियों के अन्तर्गत होगा।

समाजवाद की उपलब्धि लोकतांत्रिक प्रक्रिया से हो सकती है। इस विषय को जयप्रकाश नारायण ने जनवरी 1947 के प्रारम्भ में प्रकाशित एक अन्य लेख 'ट्रैन्जिशन टु सोशलिज्म' में भी उठाया है। इस लेख में जयप्रकाश नारायण का दृष्टिकोण इस दिशा में पहले की अपेक्षा और अधिक सकारात्मक था कि समाजवाद की पूर्ण उपलब्धि लोकतांत्रिक सामाजिक परिवर्तनों के आधार पर ही हो सकती है। जयप्रकाश नारायण ने 1872 में प्रथम 'काम्युनिस्ट इण्टरनैशनल' के हेग सम्मेलन में दिए गए मार्क्स के प्रसिद्ध वक्तव्य कि, ष्हमारा यह आग्रह नहीं है कि इस लक्ष्य (समाजवाद) को प्राप्त करने का रास्ता हर जगह एक होगा। हम मानते हैं कि विभिन्न देशों की संस्थाओं, तौर–तरीकों तथा परम्पराओं को अवश्य ध्यान में रखा जाए, अमेरिका व इंग्लैण्ड जैसे कुछ देश हैं, जहाँ श्रमिक वर्ग शांतिपूर्ण उपायों से इसे प्राप्त कर सकता है'' का उल्लेख किया। जयप्रकाश नारायण ने तर्क दिया कि मार्क्सवाद ने स्वयं समाजवाद की स्थापना के लिए दो मार्गों की कल्पना की है, एक शांतिपूर्ण, दूसरा हिंसात्मक। इनमें से कौन सा मार्ग अपनाया जाए यह उस देश के मूल्यों, परम्पराओं तथा राजनैतिक संरचना पर निर्भर करता है। राजनैतिक लोकतंत्र की स्थिति में शांतिपूर्ण तरीका प्रभावी हो सकता है। उनका विश्वास था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाएगा और 'पूर्ण लोकतांत्रिक भारत की स्थिति में समाजवाद की ओर संक्रमण एक शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक प्रक्रिया होना चाहिए।[xviii]

जयप्रकाश नारायण के इन लेखों (जो कांग्रेस पार्टी के पांचवे सम्मेलन के पहले ही प्रकाशित हुए) से सैद्धान्तिक विकास की प्रक्रिया का संकेत मिलने के साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि पार्टी किस प्रकार के समाजवाद को स्वीकार करने जा रही थी। उसकी अवधारणा के संबंध में स्थिति क्या है? महायुद्ध के उपरांत फरवरी/मार्च 1947 जब कानपुर सम्मेलन में पार्टी की पहली बैठक हुई तो ''लोकतांत्रिक समाजवाद उसके बैनर पर स्थाई ढंग से अंकित हो चुका था।[xix] 1 मार्च 1947 को स्वागत समिति के अध्यक्ष के रूप में सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए नरेन्द्र देव ने सोशलिस्टों की सैद्धांतिक स्थिति की व्याख्या की तथा घोषणा की जहां तक कांग्रेस समाजवादियों का सम्बन्ध है, हम लोग सदैव जनतन्त्र और स्वतंत्रता के लिए ही प्रतिबद्ध रहे हैं। हमने सदैव एक स्वयंसिद्ध बात के तौर पर यह माना है कि समाजवाद ही पूर्ण जनतंत्र है और यह कहा है कि समाजवाद एक सिद्धांत है, जो मानव व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास पर उतना ही जोर देता है, जितना आर्थिक स्वतंत्रता पर। सोवियत रूस ने मानव क्रिया–कलाप के विभिन्न क्षेत्रों में जो सिद्धियां प्राप्त की हैं उनके हम लोग सदैव प्रशंसक ही रहे हैं, पर हम उसके मित्र भाव से आलोचक रहे हैं और खेद के साथ कहते आए हैं कि उसने राजनैतिक स्वतंत्रता के प्रश्न की उपेक्षा की है।''[xx]

पार्टी अब भी हिंसा के प्रयोग को पूरी तरह अस्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी। इसने शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक तरीकों को इस शर्त पर स्वीकार किया था कि भारतीय संविधान–जो निर्माण की प्रक्रिया में था– लोकतांत्रिक होगा। किन्तु यदि यह संविधान अलोकतांत्रिक हुआ तो का चरित्र सोशलिस्ट हिंसक तरीके अपनाने में संकोच नहीं करेंगे।[xxi] स्वतंत्रता के उपरान्त पार्टी के ष्सिद्धान्त व संगठन'' पर लिखे गये एक नोट में जयप्रकाश नारायण ने अपने पिछले विचारों की पुष्टि की कि समाजवाद

लाने के लिए इन दो तरीकों, हिंसात्मक क्रांति अथवा शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक प्रक्रिया में से किसे अपनाया जाए यह देश की परिस्थितियों के अनुसार तय किया जायेगा। इनमें से कोई भी एक तरीका उतना ही कारगर है जितना कि दूसरा। उनके अनुसार, ''यह मानना कि केवल सशस्त्र क्रांति से ही समाजवाद आ सकता है। वैसा ही अमार्क्सवादी है जैसा कि यह दावा करना कि केवल शांतिपूर्ण तरीके से ही ऐसा हो सकता है।'' उन्होंने अनुभव किया कि भारत में स्थिति मार्क्स के समय के बहुत से देशों में व्याप्त स्थिति से भिन्न है, इसलिए ''भारत की वर्तमान स्थिति तथा आगे अनुमानित स्थिति में लोकतांत्रिक तरीका ही ''समाजवाद हेतु कार्य करने का एकमात्र सही तरीका है।[xxii]

गांधी की शहादत के समय तक हिंसात्मक तरीकों की सैद्धान्तिक स्वीकृति की आकांक्षा मात्र पर पार्टी में प्रश्न उठने लगा था। यह तर्क दिया जाता था कि उन देशों में, जहां सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तनों के लिए हिंसा का प्रयोग किया गया, कुल मिलाकर अंतिम परिणाम अच्छे नहीं निकले। राजनीति में अनैतिक मार्ग ग्रहण करने तथा परिणाम से साधनों का औचित्य सिद्ध होता है'', इस सिद्धांत को अपनाने से एक नए तरह के भ्रष्टाचार तथा शोषण का मार्ग प्रशस्त हुआ है जिसके कारण नये तरह के सर्वसत्तात्मक ढांचे में मनुष्य पुनः पराधीनता का शिकार हुआ है। इसलिए अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए साधनों की पवित्रता आवश्यक है। पार्टी में इस तरह का तर्क व विश्वास गांधी के प्रभाव का सीधा परिणाम था, क्योंकि वे सदैव ही इस बात पर जोर देते थे कि केवल अच्छे साधनों से ही अच्छे परिणाम मिल सकते हैं। महासचिव जयप्रकाश नारायण ने पार्टी के नासिक सम्मेलन में जिसमें कांग्रेस छोड़ने का फैसला लिया गया–प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया।'' सबसे बड़ी बात जो उन्होंने (गांधी जी ने) हम लोगों को सिखायी वह यह थी कि साधन ही साध्य हैं, बुरे साधन कभी अच्छे परिणामों तक नहीं पहुचा सकते तथा उत्तम लक्ष्य के लिए उत्तम साधन की आवश्यकता होती है। हम लोगों में से कुछ इस सत्य के प्रति संशयग्रस्त हो सकते हैं लेकिन हाल की दुनिया की घटनाओं तथा अपने देश की घटनाओं से मैं इस विचार से सहमत हो गया हूँ कि और कुछ नहीं केवल अच्छे साधन ही हमें अच्छे समाज अर्थात समाजवाद के लक्ष्य तक पहुंचा सकते हैं।[xxiii]

जयप्रकाश नारायण ने अपनी रिपोर्ट में मार्क्सवाद को सामाजिक क्रांति के एक विज्ञान के रूप में स्वीकार करते हुए, ''बहुत सी चीजें जिन्हे महात्मा गांधी ने हमें सिखाया है'' उनमें से रचनात्मक व सामाजिक गतिविधियों तथा राजनीति में नैतिक मूल्यों व पवित्र साधनों का पालन, पर विशेष जोर दिया। इस सम्मेलन में पारित एक प्रस्ताव में कहा गया। ''गांधी जी का, बिना किसी तरह के धार्मिक भेदभाव, प्रांतीय एवं जातीय अनन्यता अथवा आर्थिक असमानता को महत्व दिए, नागरिकता के समान आधार पर जोर देना, बिना किसी तरह के आक्रमण या प्रतिकार की कारवाई के राष्ट्रीय प्रगति की आधारशिला उपलब्ध कराता है– इस देश में समाजवादी आन्दोलन, इन नवीन सामाजिक मूल्यों को स्थापित करने के गांधी जी के धैर्यपूर्वक किए गए प्रयासों से बहुत अधिक समृद्ध हुआ है। सोशलिस्ट पार्टी इस विरासत को साभार स्वीकार करती है तथा सामाजिक प्रगति के इन सिद्धांतों, जिन्हें गांधी जी ने अपने जीवन तथा मृत्यु में इतने उदात्त ढंग से परिपुष्ट किया है, के प्रति सत्यनिष्ठ रहने की प्रतिज्ञा करती है।[xxiv]

अधिकतर सोशलिस्टों द्वारा यह स्वीकार किया गया कि समाजवाद गांधीवाद नहीं है तथा दोनो आंदोलनों के बीच लम्बे समय से परस्पर संदेह भी बना हुआ है। लेकिन संदेह का कारण दोनो तरफ वस्तुपरकता का अभाव माना गया। गांधी और मार्क्स के नाम ही प्रायः बाधक बनकर सामने आए तथा हिंसा के मुद्दे ने सैद्धांतिक हिंसा भी अन्य मुद्दों को उलझा दिया। इसके अतिरिक्त श्वैज्ञानिक

समाजवादश के पारम्परिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करने वाले तत्व, जिन्होंनें गांधी को मध्ययुगीन, प्रतिक्रियावादी तथा निहित स्वार्थियों का अप्रत्यक्ष समर्थक तक कह कर उनकी उपेक्षा की थी, भी पार्टी में पूर्णरूप से अनुपस्थित नहीं थे।[xxv]

समाजवाद तथा गांधीवाद दोनों सामाजिक क्रांति के समर्थक हैं, केवल सामाजिक सुधार के नहीं, क्योंकि वे दोनो ही सामंतवाद तथा पूंजीवाद की समाप्ति के लिए प्रतिबद्ध है तथा वर्गविहीन तथा जातिविहीन, शोषण रहित, सहकारी या दूसरे शब्दों में समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य रखते हैं। दोनों ही वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा तथा मानव व्यक्तित्व की गरिमा को सुनिश्चित करना चाहते हैं। सोशलिस्टों द्वारा गांधी दर्शन के इस पुनर्मूल्यांकन तथा उसके सामाजिक व आर्थिक लक्ष्यों के साथ व्यापक सहमति तथा व्यवहारिक कार्य की मांग के कारण इन दोनों शक्तियों का निकट आना अनिवार्य हो गया। अतः इस बात की ओर इंगित किया गया कि, ''भारत में समाजवाद, गांधीवाद की उपेक्षा करेगा तो निश्चित खतरे में पड़ेगा।''[xxvi]

पारम्परिक समाजवाद तथा गांधीवाद के प्रति दृष्टिकोंण में इस परिवर्तन से पार्टी में विकास के एक नये युग का सूत्रपात हुआ किन्तु यह निश्चित था कि पार्टी अब परम्परागत मार्क्सवादी लेनिनवादी की कौन कहे केवल मार्क्सवादी भी नहीं रही। यद्यपि इसके बहुत से सदस्य अब भी मार्क्सवाद के प्रति निष्ठाबद्ध थे, तथापि कुल मिलाकर पूरी पार्टी का झुकाव अधिकतर लोकतांत्रिक समाजवाद तथा गांधीवादी की ओर था।

सन्दर्भ सूची

[i] अशोक मेहता, सोशलिज्म एण्ड गांधीज्म (1935), पृष्ठ 6–7
[ii] मसानी, द कॉम्युनिस्ट ऑव इण्डिया, ए शार्ट हिस्ट्री, 1945, लन्दन पृष्ठ 53
[iii] लिमये, पू. उ., पृष्ठ 3
[iv] वही पृष्ठ 19
[v] वही, पृष्ठ 17
[vi] जयप्रकाश नारायण, वाइ सोशलिज्म, बम्बई, 1964 पृष्ठ 131–32
[vii] वही पृष्ठ 142
[viii] जयप्रकाश नारायण, वाइ सोशलिज्म बम्बई, 1964 पृष्ठ 1
[ix] जोगेश चटर्जी, इन सर्च ऑव फीड, पृष्ठ 514
[x] जयप्रकाश नारायण, वाइ सोशलिज्म, बम्बई 1964 पृष्ठ 80–84
[xi] संघर्ष, 29 जनवरी, 1940
[xii] हरिजन, 20 अप्रैल, 1940
[xiii] जयप्रकाश नारायण, इनसाइड लाहौर कोर्ट, पृष्ट 101–102
[xiv] मसानी, सोशलिज्म रिकन्सिडॅर्ड, 1945 लन्दन पृष्ठ 55
[xv] जयप्रकाश नारायण, द सोशलिस्ट, 1964 बम्बई वे, पृष्ठ 17
[xvi] जयप्रकाश नारायण, 'माई पिक्चर ऑव सोशलिज्म', जनता 24 नवम्बर 1946
[xvii] जयप्रकाश नारायण, 'द सोशलिस्ट' वे, 1964 बम्बई पृष्ठ 17
[xviii] जयप्रकाश नारायण, 'द ट्रैन्जिशन टु सोशलिज्म', जनता, 26 जनवरी 1947
[xix] जयप्रकाश नारायण, सोशलिजम, सर्वोदय एण्ड डिमॉक्रीसी, 1964, बम्बई पृष्ठ 66

[xx] चन्द्रोदय दीक्षित, डेमोक्रेटिक सोशलिज्म इन इण्डिया, पुष्ठ 35
[xxi] पालिसी स्टेटमेंट, सोशलिस्ट पार्टी (1947), पृष्ठ 14
[xxii] जयप्रकाश नारायण, 'आइडिऑलजी एण्ड आर्गनाइजेशन', पृष्ठ 1–2
[xxiii] सोशलिस्ट पार्टी, इण्डिया, रिपोर्ट ऑव द सिक्स्थ ऐन्युअल कॉन्फरेन्स, पृष्ठ 96–97
[xxiv] वही, पृष्ठ 84–103
[xxv] वही, पृष्ठ 35
[xxvi] अरुणा आसफ अली–द सोशलिस्ट पार्टी : इट्स रिजेक्सन ऑव मार्किसज्म।